Chapter-1

प्रथम अध्याय

लोक संगीत

लोक + संगीत, सामाजिक प्राणी और संगीत, जिसमें कोई शास्त्र का बंधन ना हो, शब्दों की किलष्टता ना हो तथा किसी प्रकार के मनुष्य निर्मित सिद्धान्तों का पालन ना करना पड़े जो कि जन साधारण का संगीत है। लोकरुचि के अनुरुप अविष्कृत हो जिसके प्रेरणा स्त्रोत सामान्य जन हो, जन साधारण द्वारा निर्मित एक ऐसा संगीत लोकसंगीत है जो कि परिस्थिति के अनुरुप हो जिसका मूलाधार शब्द हो व जिसमें स्वरों का महत्व गौण हो, जो साधारण जन समूह का मनोरंजन करने में सक्षम हो, जिसकी विषय वस्तु मानव के दैनिक-जीवन से ओत-प्रोत हो।

लोकसंगीत अर्थात लोक या लोक में व्याप्त संगीत जो कि देश - परदेश से विशेष सम्बन्ध रखता है अतः यह स्वाभाविक बन जन-मन रंजन करने की, जीवन के दुख हरने की अदम्य शक्ति भी रखता है ।

"लोकसंगीत को एक परिधि या परिभाषा में नहीं बाँधा जा सकता । "लोक" से जुड़ी समस्त कलाएँ व विद्याएँ जन जीवन के सतत् प्रवाह से जुड़ी होती है व उनमें निरन्तर वृद्धि भी होती रहती है । अतः उनमें परिवर्तन स्वाभाविक है। " [१]

भारतीय संगीत में शास्त्रीय संगीत तथा अन्य विद्याओं की तरह लोक संगीत भी एक सम्पूर्ण विद्या है । यह मानव की सहज प्रवृत्ति का विकसित रुप है और शास्त्रीय संगीत सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकसित रुप । लोक संगीत सामूहिक रुप में निखरता है, एकांकी प्रवृत्ति द्वारा इसे समृद्ध करना संभव नहीं, यह संगीत समूह द्वारा परिस्थिति में बंधकर श्रव्य रुप में पनपता है, जन - साधारण द्वारा कोई भी घटना शब्दों के माध्यम से एक दृश्यात्मक रुप में सचित्रित हो उठे यही लोक संगीत की विशेषता है । ये सहज

१ राजस्थान का लोक सगीत - श्रीरामलाल माथुर, पृ.स - ३ ।

स्वाभाविक और मौखिक अनुकरण की परंपरा पर निर्भर होते हैं । एक कंठ से दूसरे कंठ में, एक हृदय से दूसरे हृदय को उल्लासित करते आ रहे हैं ।

लोक जीवन की अकृत्रिमता से परिपूर्ण मानव हृदय के भावों :- आशा - निराशा, सुख - दुख, संयोग - वियोग, राग - द्वेष, आमोद - प्रमोद, कामना, स्नेह, ईर्ष्या, मंगल -अमंगल संस्कार एवम् जीवन मरण तक की सामाजिक परंम्पराओं को व्यक्त करते हैं। इन्हें हम समाज का दर्पण कह सकते हैं । इनके द्वारा हम देश - प्रांत आदि के रहन - सहन, रीति - रिवाज, वेश - भूषा, खान - पान का परिचय कर सकते हैं । सहज सरल शब्दावली होते हुए भी इसकी धुन छोटी होती है परन्तु शब्दों का अर्थ विशालता लिए हुए होता है, हमारी संस्कृति व जन - जीवन का साकार चित्रण होता है, जिसमें किसी व्यक्ति विशेष को आधार नही माना जा सकता, इसमें परम्परागत पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिवर्तन होता है, किन्तु एक व्यक्ति को आधार मानने की इसमें किसी प्रकार की गुंजाइश नहीं होती है।

संगीत सुधा पान करना मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है, प्रत्येक मानव मन में किसी ना किसी सीमा तक यह प्रवृत्ति हमें मिलती है यही प्रवृत्ति यदि स्वर लहरी के रुप में जन - समूह में प्रस्फुटित होती है तो लोक गीत का रुप ले लेती है यह क्रम निरन्तर चलता रहता है ।

*****

लोक संगीत का उद्भव एवम् विकास :-

जहाँ जहाँ लोग होंगे, वहाँ वहाँ संगीत अवश्य होगा ऐसा संगीत जिसे हम लोकसंगीत के रुप में जानते हैं यह संगीत मनुष्य की दैनन्दिनी में रचा बसा रहता है। मनुष्य के जीवन के हर पहलू, हर भाव, हर व्यथा, हर उल्लास, हर पर्व, या यों कहें कि मानव स्वयं के व मानव और समाज के अस्तित्व एवम् सम्बन्धों का द्योतक है, व इन्हें भलिभांति उजागर करता है । संगीत का विराट स्वरुप ही लोक संगीत है - तो ये तय हुआ कि समूची सृष्टि में संगीत व्याप्त है, और सृष्टि के केन्द्र मानव के जीवन में भी व्याप्त है । इस लोक संगीत की अभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यम है । जिसमें प्रमुख है - भाषा । यह हमें ज्ञात है कि स्थानान्तर पर भाषा में अन्तर आता है, सभ्यता व भाषा के आयामों में तैरता, डूबते, उतराते लोक संगीत का कलेवर भिन्न - भिन्न होता है पर आत्मा एक। मानव जीवन को परिपूर्ण करनेवाला माध्यम है लोक संगीत । इस लोक संगीत के बिना मनुष्य उसके जीवन और समाज व संस्कृति की कल्पना करना ही कठिन है । भाषा एवं साहित्य का विकास समान्तर होता है, इसी प्रकार साहित्य व संगीत का विकास समान्तर है, इस प्रकार भाषा, साहित्य एवम् संगीत परस्पर योजक, संयोजक, परियोजक, प्रेरक एवम् पूरक हैं ।

मनुष्य जब भाषा से परिचित हुआ तो अपने भावों को अपने - अपने अनुसार व्यक्त करना आरम्भ किया, सामाजिक एवम् पारिवारिक गतिविधियों को ही स्वरों में बांधकर गुन-गुनाने लगा तथा ये कर्णप्रिय ध्वनि समयानुसार विकसित होते हुए गीतों के रुप में हमारें समक्ष आयी ।

संगीत मनुष्य के हृदय में बसा है जिसकी अभिव्यक्ति मनुष्य की इन्द्रियों एवम् अवयवों द्वारा होती है भाव, स्वर बनकर उभरतें हैं धुन, ताल, लय और फिर शब्दों द्वारा

उनकी प्रस्तुति होती है, अतः यह तो निश्चित रुप से कहा जा सकता है कि मनुष्य के हृदय में पहले स्वरों की उत्पत्ति हुई तत् पश्चात शब्दों की ।

लोक संगीत ही जन साधारण की आंतरिक भावनाओं का प्रतिक है । यह देश की संस्कृति का जीता - जागता पर्याय है । किसी भी देश के सांस्कृतिक विकास का पता उस देश के संगीत को जानकर चलता है यह एक सहज भावनाओं द्वारा प्रस्फुटित स्वरलहरी है, इसे जानने समझने के लिए किसी बौद्धिक ज्ञान, या शास्त्रीय ज्ञान की आवश्यकता नहीं रहती यह स्वतः ही मनुष्य के हृदय में समा जाते हैं और नये नये रुप में प्रस्फुटित होते हैं । लोक संगीत में किसी भी प्रकार का कठोर नियम नहीं है जो कि भावाभिव्यक्ति में बाधा डाले । लोक संगीत के मुख्य आधार स्वर, भाषा, लय तथा ताल हैं इन्हीं का मिश्रित रुप लोक संगीत को जन्म देता है । गीत की भाषा भी परिस्थिति के अनुसार बदलती है । यह मानव जीवन की सुख दुख की कहानी को चित्रित करता है । भाव व जीवन के प्रसंगो के आधार पर ताल निर्धारित किए जाते हैं ।

लोक संगीत के माध्यम से मानव अपने हृदय के भावों, पूर्ण प्रसंगों का वर्णन करने में सफल हो जाता है, जो अपने आप में सहज है । जो संगीत बिना प्रयास अन्तःकरण को छू जाए, उर्मियों को जगाए, अपने आप उन स्वरों का आंदोलन या ऐसी लय जिस पर स्वतः पाँव थिरक उठे या यूँ कहिए की सारा शरीर सचेतन होकर झंकृत हो वही लोक संगीत है । जो लोगों द्वारा लोगों के लिए अपने आप बना है। इसी स्वयं-भू संगीत को हम लोक संगीत कहते हैं, जिसकी शिक्षा - दिक्षा लिए बिना ही यह सहज रुप में प्रकट होता है । मानव के अकृत्रिम भाव का मर्म स्पर्शी चित्र लोक संगीत में मिलता है । लोक संगीत का प्रेरणा स्त्रोत जन मानस हैं व उसमें विकास का क्षेत्र विस्तृत है । लोक संगीत के साहित्य में हमें तत्कालीन सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव दिखाई देता है, साहित्यिक दृष्टि से इनका क्षेत्र व्यापक है । अलग - अलग प्रदेश की जनपदीय भाषाओं से इनका कलेवर बना है ।

राजस्थान के लोकगीत पर क्षेत्रीय भौगोलिक एवम एतिहासिक विकास -

क्षेत्रीय प्रभाव :- राजस्थानी धरा प्राकृतिक दृष्टि से कहीं समतल है, कहीं पर्वतीय है तो कहीं मरुस्थलिए! इन तीनों भिन्नताओं का प्रभाव यहाँ के संगीत में भी दिखाई देता है।

राजस्थान में जयपुर - अलवर, कोटा, भरतपुर, करौली - आदि क्षेत्रों की भूमी प्रायः समतल है, किन्तुं यहाँ के गीत प्रायः उतने ही उतार - चढाव वाले मिलते हैं। यदि हम - राजस्थान के दक्षिण की ओर आते हैं तो पहाड़ी क्षेत्रों को पाते हैं। उदयपुर, चित्रौड़गढ़, डूँगरपुर, बाँसवाड़ा, भीलवाड़ा, माउन्टआबू आदि। यहाँ के गीतों प्रायः दो से चार स्वरों तक ही होते हैं, तथा यहाँ निवास करने वाले व्यवसायिक कलाकारों में स्त्रियाँ व पुरुष दोनों ही गाने बजाने का कार्य करते हैं।

राजस्थान का तीसरा मुख्य भाग मरुस्थलिए इसके अन्तर्गत जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर व कुछ हद तक जोधपुर आता है। दूर-दूर तक रेत ही रेत, इन क्षेत्रों में उठने वाले स्वरों की गूंज विशिष्ट, आकर्षक व मधुर प्रभाव हमारे हृदय पर छोड़ती है। चारों और मरुस्थलिए भाग, उन्मुकत वातावरण में ऊचें स्वरों की गूंज से सम्पूर्ण राजस्थान झूम उठता है इन क्षेत्रों में निवास करने वाली सागीतिक जातियां लंगा, मांगण्यिार, कामड़, भोपे, सरगड़े हैं।

भोगोलिक प्रभाव : राजस्थान की संस्कृति और सभ्यता विश्वभर में प्रसिद्ध है। राज्य का लगभग ५३% भाग रेगिस्तानी है, थार मरुस्थल का प्रदेश - अपनी कथाओं से गूंजता है, पूरे प्रदेश में वैभवशाली महल, किले, मन्दिर, ऐतिहासिक - गौरव को जीवंत कहते हैं। भौगोलिक स्थिति के अनुसार लगभग ५३% थार मरुस्थल अर्थात रेत ही रेत कृषि का नामोनिशान तक नहीं पानी की बेहद कमी ! संघर्षभरी ज़िन्दगी ! किन्तु जब मानव हृदय पीड़ा को कम करने का प्रयत्न करता है उस समय उसे संगीत ही पहला साधन मिलता

है अर्थात संगीत के माध्यम से अपने सभी दुख-दर्द को भुला कर उसमें रम जाना उसकी पीड़ा के एहसास को कम कर देता है।

विषम परिस्थितियों का सहजता से सामना करना राजस्थान के लोगों को बखूबी आता है क्योंकि उनके पास संगीत की ऐसी धरोहर है कि सभी इच्छाओं को पूर्ण करने में सक्षम है, गीतों के माध्यम से सहज रुप में अपने भावों को व्यक्त करना यहाँ के लोग-कुशलता पूर्वक - जानते हैं।

राजस्थान के भौगोलिक परिवेश ने विभिन्न प्रकार से लोक जीवन का निर्माण किया, घाटियों, जंगलों और शुष्क मरूस्थल की वैविध्यमयी प्रकाश वाला ये प्रदेश यहाँ के संगीत के माध्यम से प्रकाशमान होता रहा। लोकजीवन का सम्पूर्ण इतिहास, सामाजिक ओर नैतिक आधारों को लोकसंगीत ने सुरक्षित रखा।

शुष्क मरूधरा में वर्षा ऋतु सर्वाधिक सुहावनी होती है, ऐसे में विभिन्न लोकगीतों का सहारा लेकर भावों को व्यक्त किया जाता है जो कि जीवन में उमंग और उत्साह को भर देता है। तथा भौगोलिक परिवर्तन में आए भावों को विभिन्न गीतों के माध्यम से व्यक्त किया गया है – उदाहरणार्थः- डोला मारवण से सम्बन्धित गीतों में राजस्थान के मौसम का सुन्दर व मनोहारी चित्रण है।

ऐतिहासिक प्रभाव : राजस्थान का इतिहास सम्पूर्ण भारत वर्ष में गौरवमयी रहा है, जहां एक ओर रण पर जाते हुए राजाओं की गाथाओं का वर्णन है तो वहीं दूसरी ओर राजपूत वीरांगनाओं का जौहर।

राजस्थानी संगीत में इनका सम्पूर्ण वर्णन हमें मिलता है लोकगीतों के माध्यम से इतिहास, प्रत्यक्ष रुप में लोक भावना द्वारा हमारे सामने आ जाता है।

इतिहास पर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होता की विभिन्न प्रकार की विपदाओं का सामना यहाँ के लोगों ने किया किन्तु रजवाड़ों, राजा-महाराजाओं के काल मे यहाँ संगीत कला को

प्रोत्साहान मिला, जिसके अन्तर्गत सभीं विषम परिस्थितियों का सामना यहाँ की प्रजा ने बखूबी किया।

आइये जानते है कि वर्तमान राजस्थान किन:किन; चरणों से होकर बना तथा उस काल में संगीत किस रुप में था।

आज जिस प्रदेश को हम राजस्थान के नाम से जानते, पहचानते व पुकारते हैं, वर्तमान स्थिती में आने तक उसको विभिन्न चरणों की प्रक्रिया से होकर आना पड़ा । प्रथम चरण में १७ मार्च १९४८ को स्थापित हुआ जिसमें - करौली, धौलपुर, भरतपुर, अलवर आदि सम्मिलित हुए ।

द्वितीय चरण में राजस्थान की स्थापना हुई जो कि २५ मार्च १९४८ में हुई इसमें कोटा, बूँदी, झालावाड, बाँसवाड़ा, डूगँरपुर, किश्नगढ, शाहपुरा, टोंक सम्मिलित हुए ।

तृतिय चरण अनुसार १८ अप्रैल १९४८ को उदयपुर के सम्मिलित होने से संयुक्त राजस्थान बना ।

चतुर्थ चरण में ३० मार्च १९४९ जयपुर, जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर के सम्मिलित होने पर राजस्थान बना ।

१५ मई १९४९ मत्स्य संघ में सम्मिलित किया गया और इसका नाम सँयुक्तबृहत राजस्थान रखा गया । इस प्रकार उपर्युक्त क्षेत्रों से मिलकर राजस्थान राज्य का निर्माण हुआ । राजस्थान ३,४३,००० कि.मी. के क्षेत्र में फैला हुआ हैं। भारत में पाए जानेवाले सभी सम्प्रदाय के लोग राजस्थान में निवास करते है । वर्तमान में राजस्थान की राजधानी जयपुर है ।

जयपुर :- "गुलाबी नगर" गुलाबी रंग में रंगें, महल, किले अपनी कथा सुनाते हैं, यह सुनियोजित शहर चारों तरफ से परकोटों से घिरा हुआ है ।

राजस्थानी और मुगलशैलियों की मिश्रित रचना और शाही - निवास City Palace शहर के बीचों - बीच स्थित है । इसमें ही एक संग्रहालय है, जिसमें राजस्थानी पोशाकों

मुगलों और राजपूतों के हथियारों का अच्छा संग्रह है । राजस्थानी लोक वाद्य नगाड़ा, बीन, सारंगी प्राचीन वाद्य भी यहाँ एकत्रित हैं । शहर के केन्द्र में स्थित हवा महल "Palace of the winds" है - जिसका निर्माण १७९९ ई. में महाराजा सवाई प्रतापसिंह ने करवाया, जो कि पाँच मंज़िली इमारत है ।

कच्छवाह शासकों की राजधानी आमेर का महल जयपुर से ११ कि.मी. की दूरी पर जयपुर - दिल्ली राज्यमार्ग पर स्थित है । इसी महल में शिला - माता का मन्दिर है। राजा मानसिंह द्वारा माता की मूर्ति लाई गई और मन्दिर में स्थापित की गई - तभी से ये कहा गया कि - सांगानेर का सांगा बाबा,
जयपुर का हनुमान,
आमेर की शिला देवी,
लायो राजा मान ।

जोधपुर :- (मारवाड) सूर्यनगरी राव जोधा ने १४५९ में जोधपुर शहर की स्थापना की । राव जोधा ने राज्य का विस्तार सभी क्षेत्रों के माध्यम से किया फिर चाहे वो स्थापत्य कला हो या फिर संगीत कला । आजादी से पूर्व जोधपुर में अनेक शहरों का समावेश था तथा दिल्ली के मुगल बादशाहों ने इसे केन्द्र माना । किन्तु बाहरी आक्रमणों का सामना करते हुए कला के क्षेत्र में विकास होता रहा । जोधपुर साहित्य एवं संस्कृति का केन्द्र तथा जैन सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान रहा । कृष्ण की भक्त मीरा भी मारवाड़ के गाँव कुड़की मेड़ता में जन्मी । कवी वृन्द का भी जन्म मेड़ता में ही हुआ, ये मेड़ता क्षेत्र लोकनाट्यों तथा ख्याल के लिए प्रसिद्ध रहा ।

जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह प्रथम (१६३८-१६७८ ई.) अत्यन्त दयालु व विद्वान थे । उनके काल में साहित्य तथा संगीत की समृद्धि हुई । यहाँ की स्थापत्य कला भी बेजोड़ है, विश्व प्रसिद्ध रणकपुर के जैन मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्ति कला का अनूठा उदाहरण है ।

महाराजा जसवन्तसिंह के कोई संतान नहीं थी अतः इनकी मृत्यु के पश्चात् औरंगजेब ने जोधपुर को अपने अधीन कर लिया तथा औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् पुनः शासन मुस्लिम शासक के हाथ से राजपूत के हाथों में आया तथा १७२४ में महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर की बागडोर अपने हाथ में ली । ध्वस्त मन्दिरों को पुनः जीर्णोधार किया और नये मन्दिरों का निर्माण किया, साथ साथ साहित्य व अन्य कलाओं को भी आश्रय दिया ।

"महाराजा अजीतसिंह ने "रंगसाल" का निर्माण कराया जिसमें संगीत की महफिलें जमती थीं" ।[१]

१६७८ से १८१८ तक जोधपुर की भूमि कई उथल-पुथल हुए कभी विकास तो कभी युद्धों की अशांति । अंत में १८१८ में ईस्टइण्डिया कंपनी के साथ सन्धि हुई और अंग्रेजों ने जोधपुर पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया तथा कला के विकास का क्रम मानों रुक सा गया ।

इस दुखान्त दौर में संगीत के विकास की गति भी शिथिल हो गई, किन्तु फिर भी महाराजा मानसिंह ने इन स्थितियों का सामना अत्यन्त ही कुशलता से किया और राज्य में साहित्य कला, संगीत कला अन्य सभी कलाओं को प्रोत्साहन दिया । फलस्वरुप कला के विकास का क्रम पुनः शुरु हुआ । राजा मानसिंह स्वयं एक कवि व उच्चकोटि के विद्वान थे, इन्होंने स्वयं अनेक ग्रन्थों की रचना की ।

"इन्होंने संयोग श्रृंगार और वियोग-श्रृंगार के सहस्त्रों स्फुटछन्द और गेय पद लिखे। राग रत्नाकर, ठुमरी, श्रृंगार वृन्द, रांगारी जीलो, नाथ कीर्तन, कृष्ण विलास, नायक नायिका लक्षण, नाथ चरित्र, "माण्ड" और टप्पें आदि आपकी रचनाएँ शास्त्रीय राग-रागिनियों पर आधारित है जिनमें संगीत पक्ष की प्रधानता है, इनके पदों पर रागों और तालों का नामांकन भी है"।[२]

---

१ राजस्थान संगीत और सगीतकार - श्री प्रतापसिह चौधरी पृ सं.-६०
२ राजस्थान संगीत और संगीतकार - श्री प्रतापसिह चौधरी पृ स -६०

वर्तमान समय में माण्ड गायन शैली का निर्वाह जोधपुर की ख्याति प्राप्त गायिकाएँ जमिलाबाई कुलसुमबाई कर रहीं हैं ।

बीकानेर :- बीकानेर का अधिकांश भाग सूखा प्रदेश है, पानी की नितान्त कमी होते हुए भी पुरातत्व व कला-कौशल की दृष्टि से राजस्थान का महत्वपूर्ण भाग है । जोधपुर के जोधाजी के द्वितिय पुत्र बीका ने १५ वीं शताब्दी में बीकानेर की रचना की ।

बाहरी शासकों के आक्रमणों का सर्वाधिक प्रभाव उत्तर भारत में दिखाई देता है । राजस्थान इन्हीं आक्रमणों से पूर्णतः प्रभावी रहा । बाहरी शासकों के आक्रमणों से इसकी प्रगति में कई उतार चढ़ाव आए, किन्तु फिर भी विकास का क्रम चलता रहा ।

बीकानेर के राजा - महाराजा आदि कलाप्रेमी हुए उन्होंने उस समय जहाँ एक ओर बाहरी शासकों का सामना निडरता से किया वहीं, दूसरी ओर विभिन्न कलाओं को राजाश्रय दिया, कई राजा - महाराजा तो स्वयं विद्वान हुए हैं । जिन्होंने अपनी विद्वता से अनेको पुस्तकों की रचना की, मेवाड़ के महाराणा कुम्भा इन्हीं विद्वानों में से एक हैं । जिनके द्वारा लिखित बहुत सी पुस्तकें हमें बीकानेर के राजकीय संग्रहालय में सुरक्षित एवं संकलित हैं । बीकानेर के संग्रहालय में चित्रकला के मुख्य विषय में राग-रागिनियाँ, नायक-नायिक भेद, रसिकप्रिया आदि मुख्य चित्रों के साथ काफी मात्रा में चित्र भी प्रदर्शित एवं संकलित हैं । इन चित्रों में जयपुर, कोटा, बूंदी, नाथद्वारा, जोधपुर आदि शैली (राग-रागिनियां) के चित्र भी संकलित हैं ।

---

१ राजस्थान संगीत और संगीतकार - श्री प्रतापसिह चौधरी पृ.स.-६०

इसके अलावा इस संग्रहालय में महाराजा सरदाससिंह जी की विणाएँ तथा विभिन्न चित्रों में (संगीत) राग-रागिनि विषय दिखाई देता है, दो-तीन चित्रों में तलवार पर पुरुष एवम् महिला कलाकारों के द्वारा नृत्य करते हुए दर्शाया गया है, इन चित्रों में नगाड़ा, सारंगी आदि का वादन करते हुए भी विभिन्न कलाकार भी दिखाई देते हैं ।

गुणीजनखाना :- रायसिंह के काल में तो संगीत के गुणीजन खाना की नींव डल गई थी। महाराजा अनूपसिंह भी एक सुयोग्य राजनीतिज्ञ, विद्यानुरागी और संगीतज्ञ थे अनेक संगीत ग्रन्थों की रचना आपने की ।

बीकानेर का गुणीजन-खाने में जगह-जगह के विद्वान कलाकार नियुक्त थे । इस गुणीजन खाने में संगीत व नृत्य की शालाएँ भी चलती थी जहाँ संगीत की शिक्षा भी दी जाती थी तथा कलाकारों को दरबार में अपनी कला को प्रस्तुत करने का समय-समय पर अवसर भी दिया जाता था । इस संगीत शाला में शास्त्रीय रागों के साथ साथ बीकानेर की माण्ड गायन शैली पर आधारित शिक्षा की भी व्यवस्था थी । जहाँ गायनकला को तो महत्व दिया जाता था वही वादन कला की "शिक्षा" की भी सम्पूर्ण व्यवस्था थी । कलाकारों को सारंगी, शहनाई, तबला, सितार, जलतरंग, करताल आदि का अभ्यास कराया जाता था ।

"महाराजा गंगासिंह के समय में शिक्षकों एवं शिक्षार्थियों की संख्या ४५ थी । गुणीजन खाने के अलावा आलम खाना, नौबत खाना, नक्कारखाना आदि विभाग थे इन विभागों पर कत्थक तथा दमामी जाति के कलाकारों का ही विशेषाधिकार था । इन लोगों में वंशानुगत दक्षता एवं निपुणता थी । लोक गीत, लोक नृत्य तथा "माण्ड" शैली में लोक गीत को भी उचित स्थान प्राप्त था" । [१]

बीकानेर रियासत की संगीत शाला में अनेक कलाकार नियुक्त थे । जो कि गायन वादन तथा नृत्य की शिक्षा दिया करते थे । वर्ष १९३९ के राजकीय अभिलाखागार बीकानेर के रिकार्ड के आधार पर एक सूची से ये पूर्णतः स्पष्ट होता है ।

१ राजस्थान संगीत और सगीतकार - श्री रामलाल माथुर जी पृ स.- ७६ ।

"बीकानेर रियासत की संगीत शाला में सेवारत कलाकारों की सूची ।

क्र.	नाम	वेतन	नियुक्ति तिथि
१.	सुपरवाइजर - एक (सरिश्ता तालीम)	--	--
२.	शमसुद्दीन - संगीत शिक्षक	४९/८	१८.८.१९२४
३.	गेणाँ खां - सारंगिया	१५/-	७.२.१९१६
४.	अल्लादिता - सारंगिया	१५/-	१.४.१९२१
५.	रावटा - सारंगिया	१२/-	१.२.१९१६
६.	नाजिया - सारंगिया	१०/-	६.८.१९२८
७.	शमसुद्दीन - तबलची	१०/-	१२.३.१९२१
८.	रमजान - तबलची	१०/-	१.१.१९१६
९.	घीसा - तबलची	१०/-	१.७.१९२१
१०.	नसीरा - मंजीरेवाला	१०/-	१.८.१९२८
११.	सराजुद्दीन - पुत्र रुकनुद्दीनखाँ (छात्र वृत्ति प्राप्त)	५/-	१.५.१९३५
१२.	दुर्गा - हारमोनियम वादक	२५/-	१.११.१९१९
१३.	सोनादमामण - गायिका	२५/-	१.११.१९१९
१४.	जमनादमामण - गायिका	२५/-	१.१०.१९२०
१५.	छोटनदमामण - गायिका	२५/-	१.११.१९२९
१६.	बख्तावरी - नृत्यांगना (सन् १८९८ से १ अक्टूबर १९१६ तक बिना वेतन कार्य किया)	६०/-	१.१०.१९१६
१७.	अल्लाजिलाई - नृत्यांगना (प्रसिद्ध माण्ड गायिका - पद्मवी से सम्मानित)	२०/-	१.२.१९२१

१८.	मेना पातर - नृत्यांगना	१८/-	१.२.१९२१
१९.	मगनी पातर - नृत्यांगना	१८/-	१.२.१९२१
२०.	सरस्वती - नृत्यांगना	१२/-	१.१२.१९२०
२१.	रतनजोत पातर - नृत्यांगना	१०/-	१.१२.१९२२"[१]

जैसलमेर :- इस स्वर्ण नगरी का निर्माण ११५६ में भाटी शासकों द्वारा किया गया । राव जैसल द्वारा ११५६ ई. में सोनार किले का निर्माण किया गया । ९९ बुर्जों वाला यह विशाल किला अत्यन्त ही अद्भुत व पराक्रम व वीर कथाओं को अपने मे समाए हुए है । स्थापत्य की दृष्टि से बेजोड़ ये किला जो बिना चूने के सिर्फ पत्थर पर पत्थर रख कर (बालू रेत मे मिलते हुए गहरे पीले रंग के पत्थर) बनाया गया है।

हवेलियाँ :- सुनहरे पत्थरों द्वारा निर्मित ये बहु मंजिली घुमावदार हवेलियाँ राजस्थान की समृद्ध स्थापत्य कला की परिचायक है । "प्रतिहार शासकों के समय यह "माण्ड" प्रदेश कहलाता था अत: "माण्ड" शैली विशेषत: इसी क्षेत्र से सम्बन्धित रही जिसका उल्लेख १३ वीं शताब्दी में संगीताचार्य शारंगदेव ने अपने संगीत - रत्नाकर ग्रन्थ में प्रथम बार किया" ।[२]

लोक संगीत, लोक नृत्यनाट्यों की अनुपम छटा बिखेरते हुए स्थापत्य तथा शिल्पकला की जीती जागती तस्वीर है - राजस्थान का पश्चिमी भाग जैसलमेर ।

ढोलामारवण जैसी रचनाओं का सृजन यहीं पर हुआ । लोक गीतों नृत्य नाट्यों के लिए भी प्रसिद्ध है ये क्षेत्र । यहाँ के कलाकार वंश परम्परा का निर्वाह करते हुए संगीत में प्रवीण रहे हैं ।

---

१ राजस्थान संगीत और संगीतकार - श्री प्रतापसिह चौधरी जी पृ सं.- ७८ ।

२ राजस्थान संगीत और सगीतकार - श्री प्रतापसिह चौधरी जी पृ.सं.- ७८ ।

वर्तमान में लंगा तथा मिरासी जाती के माण्ड गायक कलाकार मुख्यतः यहीं निवास करते हैं तथा भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में माण्ड गायन शैली को प्रस्तुत कर अपनी धाक जमा रहें हैं ।

आलमखाना :- जैसलमेर के राजदरबार में गाने-बजाने का कार्य करनेवाले परिवारों को "आलमखाना" कहा जाता था । इन परिवारों को विशेष सम्मान दिया जाता था । तथा समस्त माँगणियार जाति के पंच कहलाते थे ।

खुशहालीबाई जैसलमेर की माण्ड गायन की श्रेष्ठ गायिक थी । हँसन खाँ जैसलमेरी माण्ड शैली के श्रेष्ठ कलाकार हुए है । वर्तमान में, राने खाँ, लालू खाँ आदि माण्ड गायक (लंगा/मिरासी) इस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं ।

*****

<u>राजस्थानी लोक संगीत</u> :- स्वतन्त्र भारत का एक प्रदेश राजस्थान, जिसकी अपनी अलग पहचान, अपने इन्द्रधनुषीय रंगों से भरी साँस्कृतिक परम्पराएँ । दूर-दूर तक रेत के टीले ही टीले, तथा निवासियों के कच्ची-पक्की झोपड़ियों के घर, उनमें भी कलात्मकता की भरमार । गोबर से पुते इन घरों के आँगन में बनी रँगोली । घर के आँगन में एक तरफ बना चूल्हा तथा दूसरी ओर नीम के पेड़ के नीचे बिछी चारपाई । सूर्यदेव के आगमन् की पहली किरण की घरों पर दस्तक, वहीं से शुरु हुई ग्रामीण जीवन की दिनचर्या । दूर-दूर से आनेवाले हवा के झोकों में भी सुन्दर मधुर ध्वनि का एहसास अत्यन्त सहज, सरल, मनोहारी लोक संस्कृति की सौंधी-मिट्टी की खुश्बू जो सदैव जिंदा रहती है उसी प्रकार यहाँ रहनेवाले लोगों के हृदय में बसा यहाँ का सुमधुर संगीत । इन स्वर लहरियों की बरखा से समूचा रेगिस्तान अछूता नहीं, यहाँ के निवासियों के हृदय में बसा अनोखा उत्साह, उल्लास, सकारात्मक सोच इन्हें सबसे अलग पहचान देती है ।

राजस्थान की धरा से उपजे ये लोकगीत सामाजिक जीवन के अनेक तत्वों को उजागर करते हैं। राजस्थानी लोक गीतों में हम पारिवारिक सम्बन्धों का विश्लेषण पाते हैं - रिश्तों की नज़ाकत उनके खट्टे-मीठे अनुभवों को इन गीतों में हमें स्पष्ट रुप से मिलता है और इन गीतों के माध्यम से हमें परिवार (कुटुम्ब) आदि की स्पष्ट जानकारी मिलती है - राजस्थानी लोक गीत सामाजिक गतिविधियों को श्रृंखलित करते हैं व जीवन को नियमबद्ध करने में सहायक होते हैं। राजस्थानी लोकगीतों की ये परम्परा वर्षों से चली आ रही है व आज भी जन-जन के कण्ठों में विद्यमान हैं । इन लोक गीतों में इतिहास छलकता है ढोला-मारवण की कथा हो या मूमल की गाथा । राजस्थानीं लोकगीतों का काव्य इतना भरा-पूरा है कि जीवन से जुड़े हर पहलू को प्रकाशमान करता है, सामाजिक, ऐतिहासिक सभी क्षेत्रों में इन गीतों द्वारा भावों को स्पष्ट किया जाता है । जीवन के प्रत्येक पहलु से जुड़े इन गीतों में एक ओर हमारी दिनचर्या का चित्रण मिलता

है तथा दूसरी ओर समाज की गतिविधियाँ परम्पराएँ व संस्कार हमारे सामने उभर कर आते हैं। राजस्थान के लोक जीवन से जुड़े प्रत्येक अनुभव को संगीत के माध्यम से व्यक्त करने में हमेशा तत्पर रहते हैं । जीवन जीने की एक ऐसी शैली जो कि हमेशा उल्लास और नवचेतना का संचार करती है, मिल बाँट कर एकत्रित होकर एक सुर में गीतों की बौछार से राजस्थान की सूखी धरा को भिगो देते है, प्रत्येक ऋतु प्रत्येक त्यौहार, प्रत्येक पर्व-उत्सव के अलग-अलग महत्व को उजागर करते हैं।

राजस्थानी धरती पर जन्मे, पले-बड़े हुए लोग आज देश-विदेश में चाहे जहाँ निवास करते हो किन्तु ये गीत इन्हें अपनी धरा से आज भी जोड़ते है । सुविधानुसार मैनें इन्हें चार भागों में विभाजित कर स्पष्ट करने का प्रयास किया है ।

पारिवारिक लोकगीत	धार्मिक लोकगीत	संस्कारगीत	विविध प्रकारके गीत
मातृत्व गीत/वात्सल्यगीत भाई-बहन के गीत/देवर भाभी के गीत/सास - बहु सम्बन्धी गीत / माता-पिता एवम् पुत्री सम्बन्धी गीत / दामपत्य गीत.	देवी-देवताओं के गीत भक्ती गीत उत्सव गीत पर्वोत्सवगीत मेलेके गीत.	जन्म से मरणतक के १६ संस्कारके गीत	श्रम गीत एतिहासिकगीत ऋतुगीत व्यवसायिक गीत

लोक गीतों का वर्गीकरण :-

१. पारिवारिक लोक गीत :-

- मातृत्व गीत
- वात्सल्य गीत
- भाई-बहिन के गीत
- देवर भाभी के गीत
- सास बहु सम्बन्धी गीत
- माता पिता एवम् पुत्री सम्बन्धी गीत
- दाम्पत्य गीत

इन लोक गीतों को सुनकर हमारे मस्तिष्क में परिवार से जुड़े हमारे रिश्तों का महत्व स्पष्ट रुप में समझ में आता है । ये गीत हमारे जीवन की मधुरता - रिश्तों की नज़ाकत, कोमलता तथा कटुता सभी भावों को स्पष्ट करते हैं - फिर इनमें वो माता का शिशु से, पति-पत्नी, भाई-बहिन, देवर-भाभी, सास-बहु, माता-पिता एवं पुत्री के सम्बन्ध आदि इन्हीं गीतों के माध्यम् से सुलझे व स्पष्ट दिखाई देते हैं ।

माँ शब्द सुनने में अत्यन्त ही छोटा सा शब्द किन्तु जितना छोटा उससे कई गुना अधिक गहराई लिए हुए, सम्पूर्ण सृष्टि ही शब्द में समा जाती है । एक बालक की पूरी दुनिया माँ के इर्द-गिर्द ही होती है । माँ का अपने बालक से तथा बालक का अपनी माँ के सम्बन्धों को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता किन्तु उनकी भावनाओं को गीत व काव्य का आधार लेकर विभिन्न ऐसे गीत हमें सुनने मिलते हैं जिससे हमें स्पष्ट होता है कि माँ की ममता के आगे किसी का जोर नहीं, बालक की हर क्रिडा को माँ से अधिक कोई नहीं जान पाता है, बालक के जन्म से पहले दिन से ही बालक की हर मुद्रा, हर भाव को माँ सबसे शीघ्र व सबसे अधिक समझती है, बालक भी अपनी माँ की आखों को पढ़कर ही अपनी क्रिया - प्रतिक्रिया देता है, एक छोटा सा बालक भी माँ के स्पर्श को

उसकी सुगन्ध को पहचान कर ही अपनी प्रतिक्रिया देता है । जैसे-जैसे बालक बड़ा होता है उसके हर पल में घटनेवाली हर नई क्रिया पर सबसे पहले उसकी माँ का ध्यान केन्द्रित होता है, उसका पहला कदम, लड़खड़ाते हुए गिरते हुए सम्भलना, उसके द्वारा बोला हुआ पहला शब्द, माँ के जीवन को नई खुशी देता है, बालक की इन सभी क्रियाओं के इर्द-गिर्द ही माँ की दुनिया हो जाती है, इन सभी क्रियाओं से माँ के हृदय में उत्पन्न भावों को लोक गीतों के माध्यम से सहजता से व्यक्त किया जाता है,

भाई-बहिन सम्बन्धी गीत :- इन गीतों में स्नेह का सागर छलकता दिखाई देता है, इन गीतों में बहिन-भाई का निस्वार्थ प्रेम छलकता है, बहिन द्वारा भाई को शुभकामनाएँ देती है "वीर" की उपाधि भी भाई को बहिन द्वारा दी गई है, इस शब्द की ध्वनि से गर्व का आभास मिलता है ।

सावन मे लडकियाँ अपने ससुराल से पीहर आती हैं तथा उनका भाई उन्हें लेने जाता है तब बड़े ही प्यार से अपने भाई के सामने अपनी मागें पूरी करने का आग्रह गीत के माध्यम से कुछ इस प्रकार करती है ।

गीत :- "बिटिया हटिया जो उतरी बाबुल तले,
वहाँ अच्छी-अच्छी चुनरी बिकाय बलैया लेहों बीरन की
अब कौन से भैया लावेंगे मोल, बलैया लेहों बीरन की
अब कौन से भैया खर्चेंगें दाम, बलैया लेहों बीरन की
पप्पू भैया लावेंगें मोल, बलैया लेहों बीरन की
गप्पू भैया लावेंगें मोल, बलैया लेहों बीरन की
अब कौन सी बहन को चुनरी के साथ बलैया लेहों बीरन की
रानी बहेना को चुनरी के साथ बलैया लेहों बीरन की " १

१ लोक गीतों में समाज - पूर्णिमा श्रीवास्तवजी पृ.सं.३८

देवर-भाभी के गीत :- देवर भाभी का रिश्ता एक ऐसा रिश्ता होता है, कभी तो देवर भाभी को माँ का दर्जा देता है तो कभी भाभी से व्यंग, हँसी-मज़ाक करता है । इस रिश्ते में अपनी अलग ही मर्यादाएँ होती है, किन्तु इस रिश्ते में पावनता की झलक मिलती है ।

गीत :- नखरालों देवरियों भाभी पर जादू कर गयों ....

सास-बहु सम्बन्धी गीत :- यदि एक स्त्री किसी की पत्नी है तो वो किसी की बहु भी है तथा उस परिवार की लाज अर्थात मर्यादा के दायरे में बंधी हुई विभिन्न ज़िम्मेदारियों का पालन भी करती है किन्तु फिर भी सास और बहु का रिश्ता हमेशा से कुछ कड़वाहट लिए हुए ही चित्रित होता है, सास जो पहले बहु रह चुकी है किन्तु फिर भी अपनी बहु के प्रति थोड़ी कठोर हो जाती है, लेकिन कभी-कभी वो ही सास अपने परिवार की तारीफ करते हुए अपनी बहु को "लक्ष्मी" का साक्षात् रुप भी मानती है ।

गीत :- "बहु मेरी होशियार" ....

माता-पिता एवं पुत्री सम्बन्धी गीत :- माता के ह्रदय के सामने संसार की कोई वस्तु नहीं। माता अपनी पुत्री के जन्म से ही एक डर लेकर रहती है कि एक दिन उसकी बेटी शादी होकर पराये घर चली जाएगी किन्तु इस डर में जो अपनापन है वो कहीं नहीं - बेटी के शादी होकर दूर जाने पर वह अनायास ही गा उठती है -

"बेटी को "बन्नी" हमनें बड़े प्यार से पाला
परदेश में ब्याहूँ नहीं" ....

माँ अपने इस एहसास को व्यक्त करके रो लेती है, किन्तु पिता के लिए पुत्री का दूर जाना अत्यन्त ही पीड़ा-दायक होता है । पिता अपनी पुत्री को ससुराल विदा करते समय यह शिक्षा देता हैं -

"पिता घर छोड़कर बेटी पति के घर जाना है

सदा संसार का बेटी यही एक कारखाना है
जिठानी-ननन्द देवरानी पड़सिन-नारियाँ जितनी
सभी से प्रेम रखके सुख का खजाना है ।
करो सेवा बड़ों की ख्याल करके
उसी में है तेरी-खुशी उसी में हमको भी सुख होना है" । [१]

दाम्पत्य गीत :- दाम्पत्य जीवन से जुड़े गीतों में श्रृंगार-वियोग नख से सिर तक का वर्णन इतने सुन्दर व आकर्षक ढंग से किया जाता है कि नायिका का सम्पूर्ण चित्र अंकित हो जाए ।

गीत :- लडली लूमा - झूमाए, म्हारो गोरबन्द नखरालो,
आलीजा म्हारो गोरबन्द नखरालो,
देराण्या, जैठाण्यां जी नै गोरबन्द गुथयो
नणदल साच मोती पोया पोया राज
म्हारो गोरबन्द ....
काचरी किवाड़ी माथे गोरबन्द टकियो,
देखत हिवड़ो रीझे रीझे राज
म्हारो गोरबन्द ....
आलीजा म्हारो ....
लड़ली लूमा-झूमा ....

इन गीतों के माध्यम से पति-पत्नी के सम्बन्धों विश्वास व रिश्ते को जोड़े रखनेवाले अटूट प्रेम की झलक मिलती है, इनमें कहीं कड़वाहट है तो कहीं मधुरता का एहसास ।

---

१ लोक गीतों मे समाज, लेखिका-पूर्णिमा श्रीवास्तवजी पृ.स.-४१ ।

प्रायः देखा जाता है कि पत्नी हमेशा अपने घर का बखान, करती है, तथा पति अपनी पत्नी को ससुराल के बारे में समझाता है। इस व्यंग विनोद का सुन्दर उदाहरण हमें इस गीत में देखने को मिलता है -

गीत :-

- "हट जा बेदर्दी गंवारवा तेरे संग ना जाऊँगी
  तेरे संग जाऊँगी, भूखों मर जाऊँगी
  मेरे पीहर जलेबिया तेरे संग ना जाऊँगी । हट ....
  तेरे संग जाऊँगी, प्यासों मर जाऊँगी
  मेरे पीहर सुराहिया, तेरे संग ना जाऊँगी" । हट ....

"पति द्वारा दिए गए उत्तर :- चल चल तू चल मेरी रनिया
तुझे मैं लेकर जाउँगा ....

चल चल तू मेरी रनिया,
तुझे मैं लेकर जाऊँगा
भूल जा तू पीहर की जलेबिया, तुझे मै लेकर जाऊँगा,
चल चल ....
तुझे मैं लेकर जाऊँगा शरबत लस्सी पिलाऊँगा
भूल जा तू पीहर की सुराहियां
तुझे मैं लेकर ...." १

---

१ लोक गीतों में समाज, लेखिका - पूर्णिमा श्रीवास्तवजी पृ सं -२९

इस प्रकार इन गीतों में वास्तविकता का परिचय हमें मिलता है, जीवन के प्रत्येक पहलु को उजागर करने में ये गीत पूर्णतः सक्षम होते हैं, जहाँ एक ओर पति-पत्नी के व्यंग का गीत है वहीं दूसरी ओर पति के दूर चले जाने पर पत्नी द्वारा उसकी याद हिचकी लेना प्रायः याद करना, आदि का वर्णन मिलता है। राजस्थान में इन गीतों को हिचकी कहा जाता है,

- साजन यूँ मत जाणजै, तोहे बिघड़े मोहे चैन,
  दब की दाजी लाकड़ी, सिलगत सारी रैन ।।
  म्हारो बादीलो चितारे
  म्हारो साइनो चितारे बैरवा आवे हिचकी
  आवै हिचकी, बैरण आवै हिचकी, बादीला री आवै हिचकी........

२ धार्मिक लोक गीत :-

- देवी देवताओं के गीत
- भक्ति गीत
- उत्सव गीत, पर्वोत्सव गीत, मेले के गीत

भारतीय संस्कृति की अपनी अलग पहचान है, कुछ मर्यादाएँ हैं, कुछ सीमाएँ हैं। ये मर्यादाएँ ही इन्हें औरों से अलग करती हैं, और सम्पूर्ण विश्व इतिहास में अपनी अलग पहचान, अपना अस्तित्व देती हैं। हमारी संस्कृति का सूर्योदय प्राचीन काल से ही मंगलगान, वेदपाठ आदि से आरम्भ होता था, मन्दिरों में पूजा अर्चना की मधुर ध्वनि का श्रवण मन में शांति, स्फूर्ती व उर्जा का संचार करने में सहायक होते हैं तथा ईश्वर की पूजा आराधना से दिन का शुभारंभ प्राचीनकाल से परम्परागत रुप में चला आ रहा है । प्रभात में घरों में पूजा-अर्चना करना, महिलाओं द्वारा देवी-देवताओं की अर्चना गीतों द्वारा

करना तथा प्रत्येक देवी-देवताओं के अपने अलग-अलग गीत गाकर उनका गुणगान करना वर्तमान में भी उनके प्रति आस्था को स्पष्ट रुप में दर्शाता है ।

आज भी मन्दिरों में जागरण के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है, तथा देवी-देवताओं जैसे - श्रीराम, कृष्ण, शिव, पार्वती, दुर्गा आदि से सम्बन्धित विभिन्न गीत हमें मिलते हैं ।

हमारे यहाँ भजन भी बड़ी संख्या में मिलते हैं मीरा, सूर, कबीर आदि द्वारा गाए गए भजन आज भी उसी भाव को दर्शाते हैं । मानव अपनी प्रवृत्तिनुसार समूह में आनन्द पूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहता है, मानव की यह प्रवृत्ति के मूल में सृष्टि रचियता ब्रह्मा जी "एकोऽहम् बहुस्यामी" की भावना कार्य करती है, त्यौहार उत्सव पर्व सभी इस प्रवृत्ति का प्रतिफलन है, क्योंकि ये सभी मानव को मानसिक संतुष्टि प्रदान करते हैं । मनुष्य अत्यन्त उल्लास, प्रसन्नता से इन उत्सवों को मनाने में गौरव प्राप्त करता है, अपने सभी दुखों को भूल कर इनको मनाने में लग जाता है ।

भारत में प्रायः सभी धर्म के लोग हैं कुछ हिन्दु तो कुछ मुस्लिम, ईसाई आदि अनेक मतांतरों को मानने वाले यहाँ निवास करते हैं । इन धर्मावलम्बियाँ की विचारधारा में भी अन्तर है - कुछ आस्तिक हैं तो कुछ नास्तिक । कुछ मूर्ति-पूजा माननेवाले हैं तो कुछ उसके विरोधक । इन सभी मतभेदों की स्थिती में सभी प्रकार के समीकरण लालायित हैं इसलिए भारत धर्म-निरपेक्ष राष्ट्र के रुप में परिभाषित है, भारत अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पर मिश्रित सांस्कृति को सुरक्षित रखना चाहता है ।

भारतीय त्यौहार पर्व और मेले इसकी विविधता में एकता का संदेश देते हैं । त्यौहार से तात्पर्य जिस दिन कोई धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाता है, पर्व से अर्थ किसी शुभ मुहूर्त से है । त्यौहार, उत्सवों पर सामूहिक रुप से आनन्द उल्लास की भावना मानव में रहती है । भारतीय मेले इन्हीं का विकसित रुप हैं, सभी जातीय भेद भुलाकर मिलजुल कर एकत्रित रुप में इन्हें मनाते हैं कोई भी भेदभाव नहीं किसी प्रकार की

अस्पर्शता नहीं होती है, सभी एक स्थान पर एक रुप में एकत्रित होकर हृदयगत भावों को व्यक्त करते हैं । विभिन्न समुदाए के लोग एक साथ एक ही स्थान पर भिन्न-भिन्न प्रकार से मनोरंजन का आनन्द लेते हैं ।

राजस्थान की संस्कृति का परिचय हमें राजस्थान के कोने-कोने में आयोजित होने वाले मेलों, उत्सवों, पर्वों से मिलता है । त्यौहार पर्वों को उल्लासित ढंग से मनाने का क्रम तो प्राचीन समय से ही दिखाई देता है, खुशी - मन के उल्लासित भावों, तरंगों, उमंगों को व्यक्त करने का एक माध्यम उत्सवों और पर्वों को मानने में है, फिर राजस्थान इस श्रेणी में क्यों ना हो ? राजस्थान में तो हर पर्व व हर उत्सव सम्पूर्ण उल्लासित भावों से मनाए जाते हैं ।

राजस्थान में कई मेले शूरवीरों, सतियों की स्मृति में आयोजित होते हैं तो कई मेलें लोक देवी-देवताओं से ओतप्रोत होते हैं - यह त्यौहारों से ही नहीं, ऋतुओं से भी भलि-भाँती जुड़े होते है ।

अजमेर का पुष्कर मेला हो या फिर रामदेव जी का मेला ! भाद्रपद शुक्ल की एकादशी को रामदेवजी का मेला अत्यन्त ही श्रद्धा पूर्वक प्रति वर्ष मनाया जाता है तथा लोक गीतों की निराली छटा रहती है ।

गीत :- रुणी चेरा, धनणीयारा, मेरा तेरा, लाल रानी
मैतरणा भरतार म्हारे हेलो, सुनोजी रामपीर।
घर, घर होवें पूजा थारी, गाँव गाँव जस गावें जी
मरत्योड़ा ने जीव दान दो, भक्तां ने वरदानजी
हो राम सा पीर थारी, पेड़ी पर ढोक लगावाँ, मन रे डा फूल चड़ावाँ
हे रूणी चेरा ....

राजस्थानी छटा बिखेरता यहाँ गणगौर का मेला हो या फिर तीज़ का मेला, हमें तो यहाँ के सांस्कृतिक परिवेश के पूर्णतः दर्शन होते हैं। लोक साहित्य का विशाल ग्रह है ये

मेले । गणगौर के मेले में गणगौर के गीत के बिना तो राजस्थानी लोक गीतों की परम्परा भी अधुरी रह जाती है, गणगौर से परस्पर जुड़ा है घूमर, राजस्थान की बात हो और घूमर की बात ना हो ये तो संभव ही नहीं है । घूमर के माध्यम से तो सम्पूर्ण लोक संस्कृति जीवंत हो उठती है, वर्षों का समय व्यतीत होने के पश्चात् भी एक राजस्थानी हृदय में वही आस्था प्रेम के दर्शन होते हैं यही आस्था समाज को सांस्कृतिक एकता के सूत्र में पिरोये हुए है ।

गणगौर के अवसर पर माता पार्वती की सवारी का चित्र।

गीत :- (गणगौर)

खेलण द्यो गिणगौर, भवँर म्हानै पूजण द्यो दिनज्यार,

ओजी म्हारी सहेल्यां जौवे बाँट

भवँर म्हानै ....

माथा ने मैमद ल्याव,

आलीजा म्हारै माथा ने मैमद ल्याव

ओजी म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव (स्थाई)

मुखड़ा ने बेसर ल्याव,

भवँर म्हारै मुखड़ा नै बेसर ल्याव

ओजी म्हारी चूपां रतन जड़ाव (स्थाई)

हिवड़ा नै हारज ल्याव,

आतीजा म्हारै हिवड़ा ने हारज ल्याव

ओ जी म्हारी हसँली उजल कराय (स्थाई)

बहियाँ नै चूड़लो ल्याव,

भँवर म्हारै बहियाँ ने चुड़ल्या ल्याव

ओजी म्हारै गजरा सूँ मुजरो कराय (स्थाई)

पगल्याँ ने पायल ल्याव

आलीजा म्हारै पगल्या नै पायल ल्याव

ओजी म्हारे बिछिया नै रतन जड़ाव

खेलण दयो गिणगौर, भवँर म्हाने ....

तीज :- श्रावण मास की तृतीया को तीज के नाम से जाना जानेवाला पर्व तीज कहलाता है । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में भाई-बहिन के निश्छल एवं नि:स्वार्थ प्रेम व नायक-नायिका के विभिन्न श्रंगारिक भाव लिए हुए गीत होते हैं । सावन के महिने में तीज

का त्यौहार मानो राजस्थानी संस्कृति का जीता जागता दर्पण हो । विभिन्न रंगों में रंगी राजस्थानी छटा अपने आप में निराली ही होती है। जहाँ एक ओर आस्था, प्रेम-भाव दिखाई देता है, वहीं दूसरी तरफ एक उमँग उत्साह में सम्पूर्ण राजस्थान सरोबार होता है।

राजस्थान की राजधानी जयपुर (गुलाबी नगर) सावन में आए इस त्यौहार का विशेष उत्साह से स्वागत करता है, तीज के दिन गुलाबी नगर में मेला भरता है और तीज माता की सवारी निकाली जाती है । तीज माता की सवारी से पहले लोक-नर्तकों के दल की प्रस्तुती आकर्षण का केन्द्र होती है । जहाँ एक ओर लोक नर्तकों का नृत्य तो वहीं दूसरी ओर वादकों का कर्णप्रिय वादन । आगे-आगे सुन्दर बैण्ड अपनी स्वर लहरियों से तीज माता की सवारी की रवानगी का आगाज़ करती है । एक तरफ हाथियों का दल अपनी मदमस्त चाल में तो दूसरी ओर रेगिस्तान जहाज (ऊँट) यानी की ऊटों का दल भी अपनी उपस्थिती कराते हुए निकलते हैं, यहाँ पर ही घोड़ों की सवारी करते हुए दरबारी इसके पीछे-पीछे चलते हैं। स्वर्ण व चाँदी के आकर्षित आभूषणों से अलंकृत रथ पर सवार पार्वती स्वरुप तीज माता की सवारी । यह दृश्य देखते ही बनता है जिसमें चारों तरफ संस्कृति के दर्शन होते हैं । रथ यात्रा के साथ-साथ विभिन्न लोक-कलाकार भिन्न-भिन्न भांति के करतब करते हुए चलते हैं।

असंख्य लोगों की उपस्थिती इस त्यौहार के प्रति आस्था के भाव होने का परिचय देती है । स्त्री-पुरुष व बच्चे सभी इसमें उल्लास से भाग लेते हैं । यहाँ तक की सभी धर्मो के लोग इस मेले का आनन्द लेते हैं, यह पर्व धर्म निरपेक्षता का प्रतीक भी माना जा सकता है क्योंकि इसमें सम्पूर्ण राजस्थान के लोग उमड़ कर आते हैं ।

तीज के अवसर पर तीजमाताकी सवारी का चित्र।

तीज के अवसर पर गाए जानेवाला राजस्थान का प्रसिद्ध गीत :-

घूमर :- म्हारी घूमर छ नखराली ए माँ

घूमर रमवा में ज्यास्याँ, ओ रजनी ....

ओ म्हारी ....

ओ म्हानें रमता ने काज़ल टीकी ल्यादयो ए माँ

घूमर रमवा ....

ओ म्हाने रमता ने लाडूड़ो ल्यादयो ए माँ

घूमर रमवा ....

ओ म्हाने परदेश्या मत दी ज्यो ए माँ

घूमर रमवा ....

हो म्हारी घूमर छ नखराली ए माँ

३ संस्कार के गीत :-

हमारी संस्कृति में १६ संस्कारों को महत्व दिया गया है, ये संस्कार मनुष्य के जन्म से मृत्यु तक की अवधि में पूर्ण होते हैं, प्रायः संस्कार परम्परा का रुप लेकर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित होते हैं । अर्थात हमारा जीवन संस्कारों से युक्त है, इनका निर्वाह हमें परम्परागत रुप में करना होता है । ये संस्कार ही हमें जीवन जीने का तरीका बताते हैं, इन्हीं के माध्यम से हम जीवन से जुड़े सामाजिक क्रिया-कलापों को नियमित करते हैं । तथा जिवनशैली में क्रम बद्धता लाते हैं । ये परम्पराएँ रीति-रिवाज ही हमारी संस्कृति का दर्पण हैं, सामाजिक जीवन से जुड़ी हर एक गतिविधि को संस्कारों के माध्यम से हम पूर्ण करते हैं । इन संस्कारों को पूर्ण करने में हमारे पारंपरिक गीतों की अहम भूमिका है, प्रत्येक संस्कारों के अलग-अलग गीत होते है । ये गीत मनुष्य के प्रति मंगल-कामना से ओत-प्रोत होते हैं, युग-युग से पोषित संस्कृति के परिचायक होते हैं । ये गीत ना तो कभी हमें पुराने लगते हैं ना ही नये, ये एक वट-वृक्ष के समान हैं जिसकी जड़े धरती के अन्दर चारों ओर फैली हुई हैं तथा उस पर नित नये पत्ते व फल लगते रहते हैं । ये संस्कार बालक के जन्म से मनुष्य की मृत्यु तक साथ होते हैं, अर्थात हमारे जीवन के हर-पल को यादगार बनाने में सहायक होते हैं व इन संस्कारों को पूर्ण करने में हमारे पारम्परिक गीतों की अहम् भूमिका है, प्रत्येक संस्कारों में इन गीतों को गाया जाता है, इन संस्कारों को विधिवत अनुष्ठानों द्वारा पूर्ण किया जाता है, तथा इन गीतों द्वारा पूर्ण प्रक्रिया का सफल बनाया जाता है, बालक के जन्म पर गाए जानेवाले गीतों से ये प्रक्रिया आरम्भ होती है, तत् पश्चात बालक का अन्न प्राशन किया जाता है जिसमें बालक को पहली बार अन्न ग्रहण कराया जाता है । इसके बाद नामकरण संस्कार किया जाता है इसमें बालक का नाम रखा जाता है, इस प्रकार जैसे जैसे बालक बड़ा होता है वैसे-वैसे अपनी संस्कृति से परिचित होता है और फिर केश-मुण्डन, यज्ञोपवीत, विवाह इस क्रम में संस्कारों को पूर्ण करता है ।

गीत :-

केसरियो बनड़ो भड़ो

तुरू रंगा के जाए, इन तुरणा रे कारणे,

हीरा वारूँ लाख ।

केसरिया बना सानें घुडल्या सोवे-२

निरखण नैं केसरिया बना, साने निरखण भैगा,

आवजो जी रा

केसरिया बना साने सेहरा सोवे-२

निरखण नैं केसरिया बना, साने निरखण भैगा,

आवजो जी रा

केसरिया बना साने कण्ठला सोवे-२

निरखण नैं केसरिया बना, साने निरखण भैगा,

आवजो जी रा

केसरिया बना, ...

४ विविध प्रकार के गीत :-

- श्रम गीत
- प्रेरणा गीत
- ऐतिहासिक गीत
- ऋतु गीत
- व्यवसायिक गीत

श्रम गीत :- इन गीतों के माध्यम से हम राजस्थानी लोक जीवन को उजागर करते हैं । खेत-खलिहानों का वर्णन, घर के आँगन में नीम का पेड़ उसकी छाँव में आस-पास की स्त्रियों का एकत्रित होकर काम करते हुए जैसे चक्की चलाते हुए, धान-पीसते हुए, मसाले साफ करते हुए आदि एक ही सुर में गीतों को गाना उनके कार्य को सहज बना देता है । कठिन से कठिन कार्य समूह में गाते हुए सरल प्रतीत होता है।

खेत पर फसल की कटाई, बुवाई, भरी धूप में हल चलाते हुए सभी गाँववालों का एकत्रित होकर खेत में काम करना तथा गीतों को गाना धूप की तपन का एहसास ही नहीं होने देता, वृक्षों से शीतल पवन का बहना, और पवन के साथ-साथ एक ही सुर लहरी में सभी का गाना वास्तविक रुप में हमारी संस्कृति को दर्शाता है । कठिन से कठिन कार्य उन गीतों के बहाव में सहज-सरल प्रतीत होते हैं । ये गीत हमारे जीवन में रच-बस गए है, प्रत्येक काम इन गीतों के माध्यम से अपने आप होते चले जाते है, हर पल हम इनसे जुड़े हुए हैं – महिलाओं द्वारा घरों से हाथ में गागर लेकर निकलना और कुएँ या तालाब से पानी भरना व एकत्रित होकर एक सुर में गाना अत्यन्त मनोहारी लगता है।

गीत : दल बादली रो पाणी सैंया कुणतो भरें।
म्हे तो भराँ म्हारी गोरो दे भरें।
किणजीं खुदाया नाड़ा नाड़िया महाराजा रे,
किणजी खुदाया है तालाब।
दल बादली
इतल-पीतल रो म्हारों, बेवड़ो महाराजा रे।
हांजी कोई पातलसी पणिहार।
दल बादली
सात सहेल्यां रो झूलरो बादीला रे,
हांजी म्हें तो पाणी नें गई रे तालाब......
दल बादली

ऐतिहासिक गीत :- इन गीतों में राजस्थान का इतिहास प्रकाशमान होता है। आज भी लोक कथाओं को लोक गीतों के माध्यम से सुनते हैं तो आँखे नम हो जाती हैं । इन गीतों में रजवाड़ों का इतिहास, वीर-वीरांगनाओं के प्रसंग का समावेश होता है। यहाँ वीरों ने बलिदान दिए तथा लोक गीतों के माध्यम से उनके बलिदान अमर हो गए - फिर चाहे रानी पद्मावती, वीर दुर्गादास, रतन राणा या फिर रिड़मल हों । इन गीतों में चारों तरफ से इतिहास झलकता है ।

"हमारी संस्कृति के इतिहास के लिए ये लोक गीत अमूल्य स्त्रोत है । कदली देश के हाथी, सोरठड़ी तलवार, देवगड़ी थाली, सिन्धु देश के घोड़े, बीजासर री बीजणीं, चित्तौड़ का गढ़, रानियाँ में पद्मावती का जिक्र इन लोक गीतों में मिलता है"। [१]

प्रस्तुत गीत व्यवसायिक जातियों द्वारा गाया जाता है इस गीत में प्रसिद्ध वीर रिड़मल की वीरता का वर्णन उनकी पत्नी द्वारा किया गया है ।

"साँवणिया रै पैलड़े मास रिड़मल घुड़ला मोलवे रे
हाँ रे म्हारी जोड़ी रे गढारौ राजवी रे .... रिड़मल राव ।
भादरवे रे दूसरे मास रिड़मल घुड़ला ने जब देवे रे
हाँ रे म्हारी जोड़रो रे गढ़ा रो राजवीरे .... रिड़मल राव ।
ओसाजां रे तीसरे मास रिड़मल घुड़ला ने धी देवो रे
हाँ रे म्हारी जोड़ये रे गंढा रे रिजवी रे .... रिड़मल राव ।
काती कै चौथ वे मास रिड़मल घुड़ला ने फैखे रे
हाँ रे म्हारी जोड़ रो हे गढ़ से रिजवी रे .... रिड़मल राव ।
रिड़मल रे उणियार ना कोई जायो ना जनम सी रे
हाँ रे म्हारी जोड़रो रे गंठा हो राजवी रे .... रिड़मल राव । [२]

१ राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, डॉ. रामपाण्डे पृ.सं.-१०८

२ लोक गीत, श्री जगदीशसिह गहलोत पृ स.-१४२

ऋतु गीत :- मानव मन के उदगार लोक गीतों के रुप में हमारे सामने आए, प्रकृति के परिवर्तन को देख मानव की स्फूर्ती को जब उसने व्यक्त करना चाहा तो प्रकृति ने खुले दिल से उसका साथ दिया ।

परिवर्तन ही प्रकृति का नियम है - एक के बाद दूसरा व दूसरे के बाद तीसरा, तीसरे के बाद चौथा - यह क्रम निरन्तर ही चलता है तथा इसी क्रम के कारण जीवन में क्रमशः रुचि व नयापन रहता है, प्रकृति के इस निराले पन का कोई मुकाबला नहीं। प्रत्येक ऋतु से उत्पन्न नई अनुभूति सौन्दर्य से परिपूर्ण होती है - वैसे तो वर्ष में छः ऋतुएँ होती हैं, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, शिशिर व हेमन्त।

प्रत्येक ऋतु का अपना ही महत्व है किन्तु फिर भी बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद ऋतुएँ ऐसी है जो कि लोक जीवन में चेतना का निर्माण करती है । प्रकृति के सौन्दर्य का वर्णन इन गीतों में भलि-भांति नज़र आता है तथा प्रत्येक ऋतु से अपनी एक विशिष्ट रसोत्पत्ति होती है।

सावन में बरखा की बूँदों का राग, चारों ओर हरियाली, पेड़-पौधों पर पानी की नन्हीं-नन्हीं बूँदे देखकर प्राकृतिक सौन्दर्य को शब्दों में समेटकर उसकी छवि को चारों और बिखेरने का सफल प्रयास इन गीतों द्वारा किया गया है । यह ऐसा चित्रण करता है कि मानों सावन की ठण्डी फुहार हमारी उर्मियों को झंकृत कर रही है ।

गीत :- चट चामासौ लाग्यो रे
चट शियाड़ौ लाग्यौ रे ....

प्रकृति की सुन्दरता में जहाँ एक ओर सावन की फुहार है तो दूसरी ओर ग्रीष्म ऋतु मे सूर्यदेव की अगन । इस गीत में नायक द्वारा अत्यन्त विनीत भाव से सूर्यदेव को अपना प्रकोप कम करने का वर्णन है ।

गीत :- तावड़ो मन्दड़ों पड़ जा रे ....

गोरी को नाजुक जीव

बादल में छुप जा रे

तावड़ो मन्दड़ो पड़ जा रे ....

अर्थात :- तावड़ो अर्थात धूप । धूप कम हो जा, गोरी (नायिका) बहुत ही नाजुक है, सूर्यदेव आप अपना प्रकोप कम कर दीजिए बादल में छुप जाईए ।

इन गीतों में जहाँ एक ओर प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन मिलता है वहीं दूसरी ओर इसके काव्य में श्रृंगारिक भाव के दर्शन होते हैं । इस प्रकार राजस्थान में असंख्य गीत ऐसें हैं जो कि ऋतु परिवर्तन से हुए प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन सजीवता पूर्ण करने में सहायक होते हैं । ऋतु चक्र के साथ-साथ इन गीतों की परंपरा भी नये-नये भावों से तरोताजा और सरसब्ज़ होती है ।

व्यवसायिक गीत :- राजस्थान में बहुत सारी जातियों के जीविकोपार्जन का साधन यहाँ की लोक गायकी है, ये जातियाँ परम्परागत गायन का कार्य करती आ रहीं हैं, ढोली, मिरासी, ढाढी, रावल, डोम, राणा, भोपा, भाँड, भवाई, कामड़ा, सरगड़े, कालबेलिया, भाट, राव, रावल आदि विभिन्न ऐसी जातियाँ है जो कि संगीत द्वारा ही अपना जीवन यापन करती हैं, इन जातियों में प्रत्येक जाति के अलग-अलग कायदे हैं, इनकी अलग-अलग परम्पराएँ हैं । कुछ जातियों में स्त्री-पुरुष दोनों गायन करते हैं कुछ में केवल पुरुष ही । कुछ जातियाँ सिर्फ माँग कर खाने में विश्वास रखती हैं, अपने अपने जज़मानों द्वारा दिए गए, आभूषणों, चीजों पर ही आश्रित होती है, अपने जज़मानों के घर जाकर उनके सामने गीतों की प्रस्तुती करना इनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य होता है, ये गीत परम्परागत विशेषताओं से जुड़े होते हैं - ये जातियां अपने बड़े-बुजुर्गों द्वारा गाए गए गीतों को वैसे ही प्रस्तुत कर वास्तविकता व मूल गायन शैली को जीवित रखने का प्रयास करती हैं । कुछ जातियाँ किसी भी एक स्थान पर टिक कर नहीं रहती हैं, किन्तु मुख्यतः

गाना बजाना ही उनका व्यवसाय होता है, इनके जीवन जीने का ये तरीका वर्षो से चला आ रहा है पीढ़ी-दर-पीढ़ी गाए जानेवाले गीत अपने बड़े-बुजुर्गो से सीखते आ रहें है व प्रस्तुत करते आ रहे हैं, साधारणतः इनकी आर्थिक स्थिती कुछ विशेष अच्छी नहीं होती हैं, किन्तु अपने मस्त मिज़ाज के कारण ये उसमें भी अत्यन्त खुश रहते हैं, इन जातियों द्वारा गाए जानेवाले गीतों में अत्यन्त ही मधुरता होती है, विभिन्न प्रकार के गीत इन्हें जुबानी याद होते हैं, जज़मानों की फरमाइश पर ये लोग अत्यन्त ही मधुरता से इन्हें गाते हैं, इनमें कुछ ईष्ट देवी-देवताओं के गाने गाते हैं तो कुछ ऐतिहासिक, कुछ पारंपरिक। कुछ गीतों के माध्यम से ये पूरी कथा का वर्णन करते हैं जिसे सुनकर मानो ऐसा प्रतीत होता है कि चित्र उभर कर सामने आ गया हो। इनके गले की हरकतें भी परम्परागत आती है, इनके गीत कर्णप्रिय होते है तथा संगत के लिए उपयोग में लाए जा रहे वाद्यों से ये गीत अत्याधिक मोहक लगते हैं, वाद्यों के वादन में भी ये स्वतः ही दक्ष होते हैं, गीत के बोल धुन के अनुरुप वादन द्वारा प्रस्तुती का समा बाँधने में दक्ष होते हैं।

❖ राजा महाराजों के दरबार में गाई जानेवाली माण्ड गायन शैली का प्रयोग राज दरबारों मे अत्याधिक रुप में किया जाता था - माण्ड की स्वर लहरी से सम्पूर्ण वातावरण अत्यन्त ही मधुर हो जाता था, रजवाड़ो में लोक कलाकारों द्वारा सभी प्रकार के गीतों में माण्ड सुनाई जाती थी, हर समय हर अवसर की अलग माण्ड गायी जाती थी इन कलाकारों द्वारा माण्ड गायकी की अत्याधिक सुन्दर व मधुर रचनाएँ तैयार रहती थीं प्रत्येक अवसर पर एक नई माण्ड का प्रयोग गायकी व कलाकार की कुशलता का अनोखा परिणाम होता था । जब राजा-महाराजाओं के यहाँ कोई विवाह आदि का अवसर होता था तब इन गायक कलाकारों द्वारा विभिन्न पारंम्परिक माण्डों का प्रयोग किया जाता था तथा प्रत्येक अवसर की माण्ड को विशेष नामों द्वारा पहचाना जाता था अर्थात प्रत्येक

माण्ड की शब्दावली हुआ करती थी, माण्ड गायकी द्वारा गीतों के विभिन्न भावों को व्यक्त किया जाता था ।

राजा महाराजाओं के शिकार पर जाते समय कलाकारों को साथ ले जाना, शिकार के पश्चात् फुरसत के लम्हों में कलाकारों की कला को परखना राजाओं का शौक हुआ करता था । युद्ध पर जाते समय संगीत के द्वारा उत्साह व युद्ध भूमि से विजय करके लौटने की इच्छा को प्रबल करने के लिए कलाकार नियुक्त होते थे जो कि युद्ध भूमी में नगाड़ों, दुन्दभी आदि वाद्यों द्वारा जोश दिलाने का कार्य किया करते थे । तथा जोश व उत्साह से गीत गाते थे जिसे "घाटी रा नगारा" कहा जाता था । इसी प्रकार राज दरबार में जब राजा-महाराजा संगीत की आघोष में आकर आराम करते थे, मदिरा पान किया जाता था तब माण्ड गायी जाती थी जो कि "कलाली" कहलाती थी।

राजदरबार की शोभा अर्थात "राजा" की शान में उनकी प्रशंसा में अनेक प्रकार की माण्ड गायी जाती थी, जिसमें उनके चरित्र, व्यक्तित्व के दर्शन होते थे इसके अतिरिक्त दरबार का वर्णन तथा राजा की न्यायप्रियता व बुद्धिकौशलता का वर्णन इस प्रकार की माण्ड में हमें मिलता है, मुख्यतः इस प्रकार की माण्ड में श्रृंगार रस व वीर रस का प्रयोग किया जाता था, ये माण्ड मुख्यतः "घुमालड़ी" कहलाती थी, इस प्रकार माण्ड गायन शैली में विभिन्न माण्ड है जो कि अपने आप में निराली हैं । कन्या की सगाई के समय जो गीत गाए जाते है वो "अरणी" कहलाते हैं, "राजपूतों में लड़की की सगाई के समय मुख्यतः "अरणी" ही गाई जाती हैं । लड़की की शादी तथा उसके पश्चात् विदाई उस समय घर के सदस्य मिलकर (माण्ड) गीत गाते हैं व दूल्हे को जल्दी वापस आने का आग्रह करते है ये गीत "मदकर" कहलाते हैं । कन्या के अपने ससुराल आने की खुशी में सम्पूर्ण वातावरण ही आनन्दित हो जाता है, चारों तरफ नववधु के आगमन की चर्चा रहती है इस अवसर पर सभी, वर और उसके परिवार के सदस्यों को बधाई देते हैं इन गीतों को "बधावो" कहा जाता है इन सभी संस्कारों की माण्ड के अतिरिक्त, प्रत्येक पर्वों पर भी गाए जाने वाले अनेक गीत हमें मिलते हैं जिनके अन्तर्गत हम उन पर्वों की मान्यता

उनको मनाने का कारण उसमें व्यक्त होता है अर्थात गीत के माध्यम हम उनमें छुपी हमारी भावनाओं कों तथा आस्थाओं को व्यक्त करतें हैं ।

माण्ड गायकी मुख्यतः रजवाड़ो में पनपी व विकसित हुई। राजदरबारों में प्रत्येक अवसर पर गीत गाने की प्रथा राजस्थानी लोक संगीत को समृद्ध व विकसित बनाती है। दरबारों में प्रत्येक अवसरों पर गीतों का प्रयोग व उन गीतों में माण्ड का प्रयोग राजस्थान के लोक संगीत का विशाल व स्पष्ट रुप दिखाई देता है ये ही गीत राजस्थानी लोक गीतों का इतिहास दर्शाते हैं अर्थात ये कोई तुकबन्दी नहीं अपितु श्रेष्ठ काव्य लिए ऐसी रचनाएँ होती हैं जो कि आपस में हमें जोड़े रहती हैं, इन गीतों में हमें हमारी संस्कृति का सम्पूर्ण परिचय प्राप्त होता है ये गीत ही हमारी संस्कृति का आईना है जो कि कई रंगों से निखरी आकृती को स्पष्ट करते हैं व राजस्थान लोक जीवन व कला संस्कृति को एक अस्तित्व प्रदान करते हैं ।

*****